बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की हिन्दी कहानी की नयी प्रवृत्तियाँ

डा. लालचन्द कहार
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, कोटा(राजस्थान)

शोध सार

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हिन्दी कहानी में कुछ अभूतपूर्व परिवर्तन हुए है. परिवेश और यथार्थ से परिवर्तित हिन्दी कहानी में यूं तो बहुत से नये परिवर्तन हुए है पर बौद्विक या सेरेब्रल पाठ व कॉमिक ट्रैजडी शैली दो ऐसे परिवर्तन भीं परिलक्षित हुए हैं जिन्होंने कहानी को रोचक और पठनीय बनाने के साथ साथ कहानी विधा को समृद्व भी किया है. हिन्दी कहानी में हुए इन परिवर्तनों के कारण समकालीन यथार्थ और अधिक तीव्रता के साथ कहानियों में अभिव्यक्त हुआ है.

बीज शब्द

कहानी में परिवर्तन, अन्तिम दशक की कहानी, बौद्विक या सेरेब्रल पाठ, कॉमिक ट्रैजडी शैली।

भूमिका

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक के प्रारम्भ में कवि अशोक वाजपेयी ने कहानी पर लम्बा आलेख 'कहानी का उपक्रम और आलोचना का संसार'[1] लिखा था जिसमें कविता की तुलना में कहानी को दोयम दर्जे की विधा माना गया. इस आलेख में यूँ तो कहानी पर बहुत से आरोप लगाये गये लेकिन सबसे महत्वपूर्ण आरोप यह लगा था कि कहानी में आत्मसजगता या 'बौद्विकता' या 'बौद्विक सघनता' की कमी है, इसलिए यह एकायामी है और इसमें किसी तरह की बौद्विक उकसाहट को जगाने की क्षमता बेहद क्षीण है. यदि वाजपेयी जी इस दशक के अन्त में हिन्दी कहानी की प्रगति देखेंगें तो उन्हें भी लगेगा कि अब कहानी अपना सरल रूप त्याग कर बौद्विक विमर्श की कहानी हो गई है, गूढ़ हो गई है. सदी के अन्त में यह कहानी की ललित विधा गम्भीर बौद्विक विमर्श की कथा हो गई है.

बौद्विक या सेरेब्रल पाठ

अशोक वाजपेयी ने अपने लेख में जो कहानी के अबौद्विक होने की बात कही थी वह एक प्रकार से कहानी की अनिवार्य नियति भी मानी जा सकती है क्योंकि–'कहानी विधा की निर्मिति कुछ ऐसी है कि उसका सत्य जीवन के ठोस अनुभव में आकार लेता है. उसकी प्रकृति अनुभवात्मक(इम्पीरियल) होती है, ज्ञानात्मक(सेरेब्रल)नहीं. जीवन में जो घटित होता है कहानी उसे पुनर्घटित करती है. उसे अनुभव के धरातल पर उतारती है. यही उसका करम धरम है. कहानी का कारोबार संवेदना से चलता है. यह मूलतः बौद्विक विधा नहीं है.'[2]

अन्तिम दशक में 'नये कहानीकारों ने एक नयी किस्सागोई विकसित की है जिसमें घटनाओं, सूचनाओं, वक्तव्यों, टिप्पणियों और तिर्यक कथनों का एक जटिल कोलाज निर्मित होता है. उसकी संश्लिष्टता और बहुरंगीपन पाठक को चकित करता है, एक अप्रत्याशित सौन्दर्यात्मक आघात देता है. यह नई किस्सागोई पाठक को अपने साथ बहा नही ले जाती बल्कि उसे जबरन खींचती और घसीटती है. कहानी के साथ चलता पाठक थोड़ा ठहरता है, पीछे लौटता है, आगे बढ़ने की अनिच्छा फिर सिर उठाती है कि तभी कहानी उसे मंत्रबिद्ध करती है, अपने साथ खींच ले जाती है.'[3]

इस दौर का कथा लेखक तो इस दशक के परिवर्तित यथार्थ के सामने पराजित खड़ा है और पाठक से उम्मीद करता है कि वह डूबते को तिनके का सहारा देगा. और यह पाठक भी कहानी का परम्परागत पाठक नहीं है. क्योंकि परम्परागत पाठक के लिए इस अन्तिम दशक की हिन्दी कहानी मे कोई जगह नहीं है. कहानी आलोचक पुष्पपाल सिंह ने इधर की कहानियों में विधाओं की आवाजाही को श्रेयस्कर बताते हुए लक्ष्य किया है कि 'इससे कहानी में अपूर्व समृद्धि आई है और अब कहानी विकराल समय में हस्तक्षेप करने वाला एक अस्त्र या एक गंभीर बौद्विक विधा बन गई है.'[4]

कथाकार अखिलेश ने कथाकुम्भ में दिए गये अपने वक्तव्य में कहा था कि–'आज के जटिल यथार्थ को रूढ़िवादी शिल्प में समेट पाना मुश्किल हो गया है इसलिए शिल्पगत प्रयोग आवश्यक है. और ऐसे में कहानी का कथित रूप से सेरेब्रल होना अस्वाभाविक नहीं है.'[5]

इसलिए परिवेश के साथ ही बाजार और मीडिया के अनावश्यक हस्तक्षेप ने कहानी का अपना रूप बदलने को विवश कर दिया है. इसलिए अब कहानी का कथ्य और शिल्प भी सरलता से जटिलता की तरफ बढ़ा है. 'आज की कहानी का स्वरूप बदला है. उसमें बौद्धिक विमर्श प्रधान हुआ है. उस बौद्धिक विमर्श के कारण उसका शिल्प बदला है. जिससे गद्य की कई विधाओं का समावेश कहानी में दिखाई देता है.'[6]

ऐसा लगता है कि 'कथाकार प्रगल्भ और वाचाल हो गया है और कथा ऐसी विदग्धता के हवाले हो चुकी है जो यथार्थ की पुनर्रचना के लिए उसके संश्लिष्ट रूपों की खोज तो करती है लेकिन संश्लेषण की इस प्रक्रिया का उद्देश्य वस्तुतः यथार्थ का विश्लेषण होता है जो मूलतः बौद्धिक कर्म है, सेरेब्रेशन है. कहानी का नया पाठ सेरेब्रेशन के उपक्रम में लिखा जा रहा है. अकारण नहीं है कि कहानी की भाषा में अब सर्जनात्मक सपाट सूचनात्मकता, निबन्धात्मकता, अप्रत्यक्ष कथनों, वैचारिक मुद्राओं, विश्लेषण बहुल पदबन्धों, समाज वैज्ञानिक सन्दर्भों तथा अन्यान्य बौद्धिक उपकरणों का निसंकोच प्रयोग होने लगा है. इससे कहानी में जटिलता और दुरूहता उत्पन्न हो रही है'[7].

आज भी कहानी मनोरंजन के लिए ही पढ़ी जाती है लेकिन उसे पढ़ने और उस पर विमर्श करने वाला एक प्रबुद्ध पाठक वर्ग अस्तित्व में आ गया है. कहानी उसे ही सम्बोधित होती है. तथाकथित आम पाठक अब प्रायः अमूर्त हो चला है. प्रेमचन्द युग की कहानियाँ शायद इस आम पाठक के लिए रही हो लेकिन अब कहानी का समूचा कार्यकलाप शिक्षित और बौद्धिक रूप से सजग मध्यवर्ग के बीच दिखाई देता है. 'ब्यौरो की सीधी सड़क पर चलता हुआ पुराने ढंग का पाठक सहसा किसी प्रतीक, बिम्ब, रूपक, सूचना, संकेत, रपट, समाजशास्त्रीय तथ्य, मिथक, किसी आख्यानेत्तर जुगत का सामना कर रहा होता है और उसके केन्द्रीय तिलिस्म को भेदने में विफल रहता है'[8].

इस दशक की कहानियों में कहानी के पहले किसी भारतीय या विदेशी विद्वानो के उद्धरण को रख कर कहानी कहने का प्रचलन बढ़ा है. जैसे कि कहानी को पढ़ने से पहले पाठक को दिशानिर्देश दिये जा रहे हों कि इस कहानी को अमुक नहीं अमुक प्रकार से पढ़ें. कहानी के प्रारम्भ में किसी अंग्रेजी साहित्य की कविता, कहानी या दर्शन से कोई उद्धरण लेकर लिख देना या कहानी के प्रारम्भ में कहानी के कथ्य या विचार से सम्बन्धित भूमिका लिखना भी इस दशक की नई शिल्प प्रविधि है जो कहानी पठन के प्रारम्भ में ही पाठक को भ्रम में ड़ाल देती है. जैसे कि यह कहानीकार की तरफ से पाठक के लिए आग्रह, दुराग्रह या निर्देश हो कि इस कहानी को आपको ऐसे नहीं बल्कि ऐसे पढ़ना चाहिए. ऐसा लगता है कि यह कहानी किसी आम पाठक के लिए नहीं बल्कि एक बौद्धिक लेखक के द्वारा बौद्धिक पाठक के लिए रची गई है.

संगमन के नवें वार्षिक आयोजन(11–13 अक्टूबर, 2003) में बोलते हुए ऋषिकेश सुलभ ने कहा कि –'किसी भी कहानी को ज्ञान के आतंक से मुक्त होना चाहिए वर्ना कहानी खराब होती है'. पर इस दशक में लिखी गयी बहुत सी कहानियों में सूचनाओं, सन्दर्भों, उद्धरणों, वक्तव्यों, जानकारियों का इतना भंडार होता है कि यह आम पाठक को आतंकित सा करती प्रतीत होती है. लेखकों द्वारा कहानी में अब विशेष विवरण देने की आतुरता नजर आती है. अपनी जानकारी और ज्ञान का प्रदर्शन करने की यह प्रवृत्ति कभी–कभी कहानियों को अरूचिकर भी बना देती है तो कहीं उन्हें सजीव करती है. जैसे कि 'संजीव और उदयप्रकाश हिन्दी के परिश्रमी कथाकार हैं. वे ज्ञान हासिल कर इसका कहानी में सर्जनात्मक उपयोग करते हैं. हिन्दी कहानी की यह नयी स्थिति है. इससे कहानी बनती भी है और बिगड़ती भी है'[9].

कहानियाँ लिखना इन लेखकों के लिए एक परियोजना के समान है. 'संजीव के यहाँ अध्ययन, ज्ञान और सूचनाओं का विशेष महत्व है और वे अपनी कहानियों में इसका सुन्दर तथा सार्थक प्रयोग करते है.'[10] वहीं उदय प्रकाश की कहानियाँ एक प्रबुद्ध और मूल्यचेतना से प्रबुद्ध पाठक की माँग करती है. एक ऐसा पाठक जिसका 'आई क्यू' तेज हो, जो मनोरंजन ही नहीं बल्कि बौद्धिक मनोरंजन की तलाश में कहानी की शरण में आया हो.

'उदय प्रकाश ने अपने समय की व्याख्या के लिए संश्लिष्ट वृतान्त की अपेक्षा जटिल बुनावट में बिम्बों, प्रतीकों, मिथकों, रूपकों, फंतासियों, सूचनाओं, विश्लेषणों की मिली जुली और प्रायः वस्तुपरक ढ़ंग की जो भाषा विकसित की है उसे दोहराना कठिन नहीं रहा.'[11] इसी कारण उदयप्रकाश के बाद आये लेखकों की एक पूरी पीढ़ी इस बौद्धिक कथा शैली के प्रभाव में रचनारत प्रतीत होती हैं.

कॉमिक ट्रैजडी शैली

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की हिन्दी कहानी में एक ऐसा तत्व प्रमुखता से पाया जाता है जो आपको एक साथ हँसने और रोने पर विवश करता है. वह तत्व है कॉमिक ट्रैजडी. यह उदय प्रकाश की कहानियों में है, यह अखिलेश की कहानियों में है. सामान्यतया किसी बात पर हँसने और मुस्कराने पर आप अपने आप को तरोताजा, निर्मुक्त और हल्का महसूस करते है पर बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक की कहानियों से हँसाने वाला कथ्य, परिस्थितियाँ या वाक्य आपको अवसाद के अंधेरे मे उतार देता है. आप हँसते है क्योंकि आपको रोना होता है और आपको रोना होता है

इसीलिए आप हँसते है. क्या यह मनोहर श्याम जोशी के 'कसप' का नायकत्व है जो आपको इसलिए हँसने पर विवश कर देता है कि यह दुनिया त्रासद है, और हँसते जाओ कि यह दुनिया त्रासद है.

कथानायकों की यह 'कॉमिक ट्रैजडी' शैली या 'ट्रैजी कॉमिक' वाली नियति बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक की उल्लेखनीय प्रवृत्ति मानी जा सकती है.–'पुराने पाठ में अगर सादगी, सहजता और वास्तवपरकता है तो नए पाठ में अवास्तव और अतिरंजना की गुंजाइश कम नहीं है. पुराने पाठ में सतह से ऊपर की प्रकट प्रस्तुत वास्तविकता है तो नये पाठ में नायक की विफलता त्रासद है लेकिन नया पाठ विफलता को ट्रेजी कॉमिक बना देता है.'[12]

अखिलेश की 'चिट्ठी' की 'कॉमिक शैली से कहानी का एक मुहावरा विकसित हुआ जिसमें हास, परिहास और उपहास के तत्व घुले–मिले थे. लेकिन दूधारी तलवार चलाने की तरह इस शैली को बरतना सहज नहीं था. उपरोक्त तीनों तत्वों का अनुपात और तालमेल बिगड़ने पर कई बार खुद भी लहुलुहान होना पड़ता है.'[13]

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में अचानक आई आर्थिक समृद्धि ने भारतीय समाज के आर्थिक परिदृश्य में आर्थिक विषमता की खाई को और अधिक चौड़ा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. जहाँ गरीब और अधिक गरीब होते जा रहे थे तो वहीं नवधनाढ्य वर्ग अपनी अमीरी के नशे में चूर हर नैतिक प्रतिमान से हटता जा रहा था. इस वर्ग की लंपटता और व्यर्थता को कहानीकार अपनी कहानियों में व्यंग्य के रूप में प्रस्तुत करता था. 'यही कथाकार का उद्देश्य भी है. इसीलिए वह किसी बात की पृष्ठभूमि में नहीं जाता, और यथार्थ के ऊपरी स्वरूप को यथासंभव फूहड़ बनाकर पेश करता है. कहानी में खिलंदड़पन के नाम पर आजकल यह प्रवृत्ति खूब चल रही है. हास्य, व्यंग्य और विडम्बना के बीच के अन्तर्सम्बन्धों को भूला दिया गया है, और मानवता का उपहास करने वाले इस तथाकथित खिलंदड़पन को इनका विकल्प बनाया जा रहा है. विगत लगभग दो दशकों में भारतीय समाज में प्रभावी हुए लंपट नवधनाढ्य तबके के हास्यबोध की यह कहानी में अभिव्यक्ति है.'[14]

'यह सबके सब पात्र अपनी सहज सामाजिकता, मूल्यवत्ता और संवेदनात्मक प्रतिनिधित्व से छिटके हुए है. और लेखक इन पात्रों की हँसी उड़ाता चलता है, उसके लेखन में इन पात्रों के प्रति मूल्याधारित वितृष्णा दिखाई देती है. अपने ही पात्रों के प्रति यह मूल्याधारित वितृष्णा और उससे उपजा व्यंग्य हिन्दी कहानी के इतिहास में अन्तिम दशक के परिवेश की ही देन है.'

उदयप्रकाश की कहानी 'पाल गोमरा का स्कूटर'[15] से मध्यमवर्ग के नायक की कॉमिक ट्रैजडी को जाना जा सकता है. उदारीकरण और उपभोक्तावाद की चपेट में आये बाजारवाद ने बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में पाल गोमरा को किश्तों में ही सही पर एक स्कूटर खरीदवा दिया. स्कूटर खरीदने को यदि उनकी मध्यमवर्गीय आवश्यकता कहा जा सकता है तो स्कूटर नहीं चला पाने को उनकी मध्यमवर्गीय विवशता ही कहा जायेगा. काफी दिनों बाद उनको स्कूटर चलाना सिखाने का जिम्मा प्रोफेसर इकबाल जाफरी ने उठाया. यह किक पर किक मारे जा रहे है लेकिन स्कूटर स्टार्ट नहीं होता है क्योंकि इन्होंने उसका इग्निशियेसन लॉक ऑन ही नहीं किया था. उन्हें देखकर कोई ऑटो वाला लॉक ऑन कर देता है. अब जाफरी साहब उसे स्टार्ट तो कर लेते हैं परन्तु चलाना सिखाना तो दूर उन्हें तो यह भी पता नही था कि स्कूटर को वापस बंद किस प्रकार से किया जाये. इस प्रकार हम देखते हैं कि कहानीकार को जहाँ भी फुरसत मिलती है वह वर्तमान व्यवस्था पर व्यंग्य करते चला जाता है.

नायक की ट्रैजी कॉमिक छवि वाली उदयप्रकाश की इस शैली का बाद में बहुत से लेखकों ने सहज ढंग से उपयोग किया–'उदय प्रकाश के प्रभाव को इस प्रकार से भी देखा जा सकता है कि उसे 'रामसजीवन' से लेकर 'पॉलगोमरा' तक के चरित्रों में कथानायक का जो ट्रेजी–कॉमिक मॉडल उन्होंने गढ़ा था उसकी प्रतिच्छवि अखिलेश की कहानी 'अंधेरा' के नायक प्रेमरंजन में भी मिलती है. कहानी के प्रारम्भिक अनुच्छेदों में प्रेमरंजन के कैरिकेचरनुमा छवि वाले चित्रण का मिलान इसी ट्रेजी कॉमिक नायक की गब्दु किस्म की भंगिमाओं से सहज ही किया जा सकता है.'[16]

इस कॉमिक ट्रेजडी की प्रवृत्ति का आना कोई अनायास नहीं था. बल्कि परिवेश और यथार्थ की जटिलताओं ने सदी के अन्त में हताश आम आदमी के सामने टूटते, हारते, अपना ही मजाक उड़ाते नायक का चरित्र गढ़ दिया था. यह शैली उदयप्रकाश ही नहीं बल्कि कई और कहानीकारों की कहानियों में भी प्रकट हो रही थी –'यह अपने आप नहीं हो गया है कि उदय प्रकाश के यहाँ अदम्य जीवन शक्ति से भरा हुआ 'टेपचू' जैसा कथानायक 'तिरिछ' के संघर्षरत किन्तु अन्ततः हालात के आगे पस्त होते कथानायक में रूपांतरित होते दिखता है और 'पॉलगोमरा' तक आते–आते लड़ते, थकते और इस तरह हाशिए पर आकर हास्यास्पद बन जाता है.

दिलचस्प यह है कि थके हारे कॉमिक कथानायक की पस्ती और टूटन उदय प्रकाश की कहानी मोहनदास की ही चारित्रिक मुद्रा नहीं है, वह अखिलेश की 'अंधेरा' कहानी के नायक का कॉमिक चेहरा बन जाता है या पंकज मित्र के 'क्विजमास्टर' की हरकतों में प्रकट हो उठता है. मनोज रूपड़ा की कहानी 'साज नासाज' का बूढ़ा कथानायक या उनकी 'टॉवर ऑफ साइलेंस' का पारसी बूढ़ा रोमिंगटन दस्तुर अपनी हताशा में क्या उदय प्रकाश के लड़ते हारते पॉलगोमरा और मोहनदास से चारित्रिक तौर पर भिन्न हैं.'[17]

यह पाल गोमरा की नहीं बल्कि पंकजमित्र की 'लकड़सुंघा'[18] कहानी के नायक की नियति है जो यह मानकर चलता है कि इस बुरे और त्रासद समय में सारे तनाव और दम घोंटने वाले परिवेश में इसके पास विकल्प था कि या तो यह पागल बन जाये या मसखरा तो इसने मसखरा बनने का प्रयास किया. 'चूँकि आज का यथार्थ आकर्षक छवियों

से ढका है. ये छवियाँ अयथार्थ को यथार्थ बनाने पर तुली हुई है इसलिए इस छद्म को भेदने के लिए कहानी में कैरीकैचर की झलक मिलने लगती है.'[19]

इसी कैरीकैचर के माध्यम से इस दशक की कहानी में कॉमिक ट्रेजडी की शैली का विकास किया गया है. इसलिए ऐसा लगने लगा है कि इस दौर के कथानायक एक टुच्चे और लुच्चे समय में जी रहे है और रीते और बीते हुए लगते है.

निष्कर्ष

अन्तिम दशक में कहानी के गद्य ने जो समृद्धि प्राप्त की है वह आश्चर्यजनक है और अपनी अन्तर्वस्तु और शिल्प संरचना दोनों दृष्टियों से गौरवपूर्ण शिखरों पर आरूढ़ है. अब ऐसा कोई क्षेत्र और विषय नही है जिस पर कहानी नही लिखी गई हो. अन्तिम दशक की हिन्दी कहानी में आये परिवर्तन बदलते हुए यथार्थ की मांग के अनुरूप आवश्यक हो गये थे. बहुआयामी यथार्थ को अपने कथ्य में समेटने के लिए बौद्विक या सेरेब्रल पाठ, कॉमिक ट्रैजडी शैली कहानी विधा को समृद्व करने का कार्य ही करती है.

सन्दर्भ

[1] हंस, फरवरी, 1992, पृष्ठ संख्या–17
[2] जयप्रकाश, कथादेश, अक्टूबर, 2006, पृष्ठ संख्या–72
[3] जयप्रकाश, कथादेश, जून 2006, पृष्ठ संख्या–54
[4] अक्षर पर्व, 'हिन्दी कहानी : पिछले बीस वर्ष, नये सरोकार' सितम्बर, 2005
[5] कथादेश, अक्टुबर 2006, पृष्ठ संख्या–76
[6] नीलमशंकर, अन्यथा–अंक–13, पृष्ठ संख्या–362
[7] जयप्रकाश, कथादेश, 2006, पृष्ठ संख्या–74
[8] जयप्रकाश, कथादेश, दिसम्बर, 2006, पृष्ठ संख्या–78
[9] समकालीन हिन्दी कहानी, सं.एन.मोहनन, पृष्ठ संख्या–64
[10] समकालीन हिन्दी कहानी, सं.एन.मोहनन, पृष्ठ संख्या–59
[11] जयप्रकाश, कथादेश, जुन, 2006, पृष्ठ संख्या–54
[12] जयप्रकाश, कथादेश, सितम्बर, 2006, पृष्ठ संख्या–47
[13] कृष्ण मोहन, कहानी समय, पृष्ठ संख्या–32
[14] कहानी समय, कृष्णमोहन, पृष्ठ संख्या–198–217
[15] हंस, इंडिया टुडे, साहित्य वार्षिकी, 1995–95, पृष्ठ संख्या–110
[16] जयप्रकाश, कथादेश, अगस्त, 2005, पृष्ठ संख्या–60
[17] जयप्रकाश, कथादेश, जून, 2006, पृष्ठ संख्या–53–53
[18]कथादेश, नवम्बर, 1999, पृष्ठ संख्या–57
[19] अजय वर्मा, समकालीन कहानी–अनुभव और संवेदना, अन्यथा–13, पृष्ठ संख्या–189